05 सामाजिक अध्ययन में परेशान करने वाले सवाल

हृदयकांत दीवान



अ. विषय परिचय

सामाजिक अध्ययन हमारे जीवन और अस्तित्व से गहरे तरीके से जुड़ा है। इससे हमारे व्यवहार को प्रभावित करने और संसार को देखने के हमारे नजरिए को गढ़ने की उम्मीद की जाती है। सामाजिक अध्ययन यह उम्मीद करता है कि सीखने वाला समाज को प्रभावित करने के साथ ही उसका अंग भी बन जाएगा। इस सवाल का, कि हम बच्चों को स्कूल में क्यों पढ़वाएँ, आम उत्तर होता है 'ताकि वे अच्छे नागरिक बनें'। सामाजिक अध्ययन एक ओर जहाँ बच्चे के जीवन में जड़ें जमाए हुए, समाजों और नागरिकों की भिन्न–भिन्न धारणाओं को समझाने और उनका विश्लेषण करने का प्रयास करता है तो वहीं दूसरी ओर यह अपने को परस्पर विरोधी तानोंबानों में उलझा हुआ पाता है।

सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम की नैतिक बुनियादों में कुछ स्वयंसिद्ध मान्यताएँ होती हैं। उदाहरण के लिए, 'सभी मनुष्य समान हैं' को भारत के संविधान के अनुसार एक स्वयंसिद्ध तथ्य माना जा सकता है। हम जिन स्वयंसिद्ध तथ्यों को अपनाते हैं उनका – भोपाल गैस त्रासदी से लेकर हमारे घर में होने वाले लिंग भेदभाव तक – हमारे आसपास के संसार का विश्लेषण करने के तरीके पर सीधा प्रभाव पड़ता है।

एक सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम में क्या और किस तरह पढ़ाया जाना चाहिए, इनका चुनाव इस पर निर्भर करता है कि हम समाज और मनुष्यों को कैसे देखते हैं। संविधान की प्रस्तावना से यह समझा जा सकता है कि इन खास शब्दों से क्या तात्पर्य है, परन्तु इनकी व्याख्या करने के ढंग, इनके प्रति आस्था और गम्भीरता की गहराइयों में बहुत भेद होते हैं। हमारी पहचान की धारणाओं से अभिन्न रूप से जुड़ा होने के कारण, सामाजिक अध्ययन अनेक दृष्टियों से एक युद्धक्षेत्र की तरह होता है क्योंकि यह विचारधाराओं और विशेष मतों को आरोपित करने के रास्ते उपलब्ध कराता है। परन्तु, शिक्षा के उद्देश्य को देखते हुए चिन्ताएँ केवल ये ही नहीं हैं। उसमें स्थिर सामाजिक सिद्धान्तों और रूपान्तरण की चिंताएँ भी शामिल हैं।

सामाजिक अध्ययन अपने आप को ऐसे मुद्दों में उलझाता है जिनसे हर व्यक्ति रोज जद्दोजहद करता है; इसी में इसकी सम्पन्नता और जटिलता निहित है।

जब हम सामाजिक अध्ययन पढ़ाने और पढ़ने पर विचार करते हैं तो हमें इन मुख्य प्रश्नों का सामना करना पड़ता है:

- **उद्देश्य** : सामाजिक अध्ययन के मुख्य उद्देश्य क्या हैं?
- **घटक** : सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम की बुनियादी निर्माण इकाइयाँ क्या हैं?
- **दृष्टिकोण** : प्रस्तावित विमर्श का दृष्टिकोण क्या है?
- **प्रकृति** : इस विषय की प्रकृति क्या है, और यह किस तरह विकसित होता है और ज्ञान का संग्रह करता है?
- **विधि** : शिक्षण की कौन–सी विधियाँ उपयुक्त होंगी?

नीचे के खण्डों में हम देखेंगे कि सीधे–साफ ढंग से इन प्रश्नों के उत्तर देना क्यों कठिन है। हम अपना ध्यान प्राथमिक कक्षाओं पर केन्द्रित रखेंगे।

ब. उद्देश्य

सामाजिक अध्ययन का सर्वप्रमुख उद्देश्य समाज को और उसमें अपने स्थान को समझने में बच्चे की मदद करना, और विवेकपूर्ण व्यक्तिगत और सामाजिक विकल्पों को चुनने में इस समझ का उपयोग करना, और उसे यह महसूस करने के काबिल बनाना कि उसके चुनाव उस समाज के निर्माण को प्रभावित करते हैं जिसमें वह रहता है।

ऐसे चुनावों का केवल व्यक्तिगत हितों से ही नहीं बल्कि पूरे समाज की सामूहिक भलाई से भी प्रेरित होना जरूरी है। चूँकि एक 'अच्छा समाज' और एक 'अच्छा मनुष्य' नैतिक अवधारणाएँ हैं, इसलिए सामाजिक अध्ययन का चौथा लक्ष्य नैतिक बोध का विकास है।

एक सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम के कुछ निहितार्थ होना चाहिए कि बच्चा अपने समाज के बारे में क्या समझता है और किस तरह वह उससे पेश आता है। कार्यक्रम को धीरे–धीरे बच्चे को बेहतर फैसले लेने, चुनाव तथा निर्णय करने में अधिक आत्मविश्वास महसूस करने में मदद करना चाहिए। उसे किसी मामले में पक्ष लेने, जो एक उदारवादी, लोकतांत्रिक बहुलतावादी समाज में महत्वपूर्ण है, के योग्य बनाना भी जरूरी है। पर इस सबके बावजूद किसी भी सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम में बच्चों में दूसरों के चुनावों और दृष्टिकोणों, तथा आस्थाओं और अनुभवों की अनेकता से सामन्जस्य बिठाना भी बेहद महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह व्यक्ति के वैश्विक दृष्टिकोण को अधिक समृद्ध बनाता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि नैतिक विकास का कुछ हिस्सा सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम में ही समाहित है। यहाँ सुझाए गए नैतिक विकास का सम्बन्ध स्वयं का तार्किक और मूल्यपरक ढाँचा

निर्मित करने में बच्चे की मदद करने से है। उसे ऐसे उपयुक्त विकल्प चुनने में सक्षम बनना जरूरी है जो अधिकाँश समाज के लिए लाभकारी हों। इसके अलावा, उसे पूरे समाज की आवश्यकताओं और पर्यावरण के प्रति संवेदनशील बनाना भी जरूरी है।

अक्सर सामाजिक अध्ययन को किसी विशेष प्रकार के सामुदायिक जीवन और नैतिक विज्ञान के बारे में सीखना मान लिया जाता है, और यह अक्सर करने और न करने वाली बातों की एक सूची तक सीमित हो जाता है जिनका बच्चों को पालन करना होता है। ऐसा कार्यक्रम बच्चे के निरीक्षण करने, अनुभव करने, विचारों को गढ़ने, और काम करने तथा निर्णय के अपने खुद के तरीके विकसित करने की छूट और अवसरों को सीमित कर देता है।

स. घटक

उपरोक्त तीन उद्देश्यों से सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम के मोटे तौर पर चार घटक दिखाई देते हैं: चुनाव, अवधारणा, जानकारी और कौशल।

1. चुनाव

एक अच्छा सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम बच्चे को नैतिक रूप से करने और न करने के निर्देशों की सूची देने के बजाय पक्ष और विपक्ष के तथ्यों को तौलकर खुद उचित चुनाव करने की उसकी क्षमता विकसित करने का प्रयास करेगा। इसमें यह महत्वपूर्ण है कि वह हमारे संविधान में स्थापित मूल्यों – तार्किक सोच, जाँच–पड़ताल, समता, विविधता और अनेकता के सिद्धान्तों – का अनुसरण करे।

2. अवधारणा

प्रश्न पूछने और समझने, उत्तरों को खोजने और चुनाव करने की योग्यता होने के लिए आधारभूत अवधारणाओं को समझना आवश्यक है। यदि हम उन्हें समुचित स्पष्टता के साथ नहीं समझते तो समझदारी भरे निर्णय नहीं कर सकते। सामाजिक अध्ययन में अवधारणाएँ ही समझ–निर्माण करने की बुनियादी इकाइयाँ होती हैं। अवधारणा से तात्पर्य वास्तविक संसार की किसी वस्तु या घटना की सैद्धान्तिक समझ से है। राष्ट्र, त्यौहार, बाजार, नागरिक, समुदाय, मनुष्य, घर, परिवार, आदि – प्रत्येक एक अवधारणा है।

सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम में लोगों की पारस्परिक निर्भरता, सम्प्रेषण, मानव समाज, समाजों का विकास, स्थिति निर्धारण और मानचित्रण, जलवायु, पर्यावास, बाज़ार, शासन व्यवस्था, सहयोग, विविधता, अनेकता, आदि के विचारों के साथ काम करने को शामिल करना भी आवश्यक है। ये अवधारणाएँ धीरे–धीरे और अधिक जटिल होती जाएँगी और उनमें नए–नए अन्तर्सम्बन्ध बनते जाएँगे। बच्चे की शुरुआती स्पष्ट अवधारणाएँ – एक कुर्सी; ईद, दिवाली, क्रिसमस जैसे त्यौहार; घर, परिवार – धीरे–धीरे विकसित होती हुई अधिक गहरी और विस्तृत होती जाती हैं। सभी बच्चों में एक–सा अवधारणात्मक विकास नहीं होता। बच्चों में अवधारणाएँ बारीक भेदों के साथ विकसित होती हैं, और उनके अपने अलग–अलग अनुभवों के ढाँचों पर ही टिकी रह सकती हैं।

इसका एक अन्य उदाहरण यह हो सकता है कि जैसे–जैसे बच्चा बड़ा होता है तो वह 'पुरुष' समूह में से 'पिता' का विचार स्पष्ट रूप से अलग महसूस करने लगता है। फिर एक स्थिति आती है जब एक पिता और दूसरे पुरुष में भेद दिखाई देने लगता है। इस तरह, अनुभवों में अन्तर ही अवधारणाओं के निर्माण में बारीक भेद पैदा कर देता है।

3. जानकारी

अवधारणाएँ वास्तविक संसार से ली गई जातीय संरचनाएँ और अमूर्त धारणाएँ होती हैं। इसका मतलब हुआ कि वास्तविक संसार की जानकारी अवधारणाओं के निर्माण का आधार होती है।

जैसे नक्शे की अवधारणा को लें। नक्शा बनाने के लिए यह जानना जरूरी है कि उत्तर कहाँ है और दक्षिण कहाँ है। इसी प्रकार, सम्बन्धों की विविधता और उनके नाम जाने बिना, आप हमारे वार्तालापों और सामाजिक प्रक्रियाओं में आने वाले लिंग–आधारित तथा अन्य कौटुम्बिक सम्बन्धों का विश्लेषण नहीं कर सकते। किसी बाजार या नगर का इतिहास समझने के लिए हमें सम्बन्धित तारीखों और घटनाओं की जानकारी की जरूरत होती है।

“*सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम में लोगों की पारस्परिक निर्भरता, सम्प्रेषण, मानव समाज, समाजों का विकास, स्थिति निर्धारण और मानचित्रण, जलवायु, पर्यावास, बाज़ार, शासन व्यवस्था, सहयोग, विविधता, अनेकता, आदि के विचारों के साथ काम करने को शामिल करना भी आवश्यक है।*”

अन्य विषयों जैसे गणित या विज्ञान की अपेक्षा सामाजिक अध्ययन को जानकारी की ज्यादा जरूरत होती है। गणित में एक बारगी जब आपके पास कुछ स्वयंसिद्ध तथ्य हो जाते हैं तो आप उनका उपयोग करते हुए तार्किक रूप से सारा ज्ञान विकसित कर सकते

हैं। विज्ञान में हम एक प्रयोग को दोहरा सकते हैं या नए प्रयोग भी कर सकते हैं। इसमें यह भी सुनिश्चित रहता है कि किन्हीं दी गई स्थितियों में प्रेक्षणों के परिणाम सुसंगत होंगे।

परन्तु सामाजिक अध्ययन में विश्लेषण को गढ़ने के लिए किसी जानकारी और तथ्यों के बगैर किसी अवधारणा के साथ अमूर्त ढंग से काम करना सम्भव नहीं है। इसका काम जानकारी में से संरचनाएँ निकालना है। इसलिए, इस विषय को पढ़ाने में यह महत्वपूर्ण बात है कि क्या जानकारी प्रदान की जाती है और वह गहराई के किस स्तर तक जाती है। पर निश्चित ही हमें, इस बारे में सचेत रहना चाहिए कि जानकारी शायद ही कभी निष्पक्ष होती है, वह आमतौर पर लोगों के दृष्टिकोणों से रंगी हुई होती है।

जानकारी को कभी–कभी भ्रमवश अवधारणा समझ लिया जाता है। यह भ्रम इसलिए पैदा होता है कि जानकारी और अवधारणा आपस में, उनके पारस्परिक सम्बन्धों तथा एक दूसरे की बात करने में समान भाषा के उपयोग, दोनों तरह से गुंथी रहती हैं। कुछ पहलुओं में, जानकारी अवधारणा के विकास से पहले होती है। पर, एक बारगी अवधारणा के विकसित हो जाने के बाद, उसका उपयोग और अधिक जानकारी को व्यवस्थित करने और बनाए रखने के लिए किया जा सकता है। किसी बच्चे के लिए 'शिक्षक' का आशय उसके खास शिक्षक से हो सकता है – यह जानकारी है। दूसरी ओर, बच्चे की माँ 'शिक्षक' शब्द का उपयोग उस विशेष शिक्षक (जानकारी) या शिक्षक की अवधारणा, दोनों को निरूपित करने के लिए कर सकती है।

4. कौशल

जानकारी से आगे चलकर अवधारणा, अवधारणा से समझ और समझ से विकल्पों का चुनाव कैसे निकलता है? इसी में कौशलों की भूमिका है। जैसे तर्क प्रक्रिया एक गणितीय कौशल है, और परिकल्पना करना और प्रयोग करना वैज्ञानिक कौशल हैं, उसी तरह सामाजिक अध्ययन के अपने विशेष कौशल होते हैं।

सामाजिक अध्ययन कौशलों के कुछ उदाहरण हैं: यह पहचानना कि किस बात का प्रेक्षण करना है, प्रेक्षण करना, प्रेक्षण का विश्लेषण करना, संरचनाएँ निर्मित करना, स्थितियों पर विचार करना आदि। हो सकता है कि ये कठिन और उच्च स्तर के कौशल प्रतीत हों, परन्तु छोटे बच्चे भी इन्हें प्रदर्शित करते हैं, उदाहरण के लिए तब, जब उनसे उनकी कक्षा या स्कूल का नक्शा बनाने को या कोई सर्वेक्षण करने को कहा जाता है। कौशल तथा अवधारणाएँ प्रायः साथ–साथ और सन्दर्भों के अनुसार विकसित होती हैं।

ऊपर सुझाए गए घटकों की जाँच करने के लिए अब हम एक उदाहरण लेते हैं।

मानव सभ्यता कैसे विकसित हुई?

मान लीजिए कि शिकार संग्रहण युग से वर्तमान समय तक मानव समाज का विकास समझना एक दिया गया कार्य है। इसके लिए यह जानकारी आवश्यक है कि मनुष्य पहले खेती करना नहीं जानते थे, वे समूहों में जानवरों का शिकार करते थे और फिर धीरे–धीरे वे औजारों का इस्तेमाल करने लगे। हमें यह भी जानना जरूरी है कि औजारों में धातु का इस्तेमाल, प्रमुख रूप से पत्थर के बेहतर विकल्प की तरह, बाद में आया। इसके लिए गुफाचित्रों में मौजूद जानकारी को इकट्ठा किया जा सकता है। अवधारणात्मक ढाँचे के लिए हमें ढेर सारी जानकारी की जरूरत होती है जिसे केवल प्रेक्षण और अनुभव से इकट्ठा नहीं किया जा सकता।

कौशल और क्षमताएँ ऐसे स्रोतों का पता लगाने, समझने और उपयोग करने के इर्द–गिर्द घूमती हैं जिनमें इन तत्वों के बारे में जानकारी होती है। इसमें साधारण पढ़ने की ऐसी सामग्री, जिसमें प्रेक्षण से प्राप्त आँकड़ों का विश्लेषण किया गया हो, या फिर मूल विवरणों की व्याख्या भी शामिल हो सकती है। इसलिए जहाँ सीधा प्रेक्षण आवश्यक न भी हो तब भी कौशलों के अन्य पक्ष जरूरी होते हैं। इनके लिए अनेक कौशल और योग्यताएँ आवश्यक होती हैं, लेकिन वे उन स्थूल रूप से प्रेक्षणीय सम्भावनाओं से भिन्न होती हैं जिनकी जरूरत विज्ञान से सम्बन्धित कार्यों के लिए होती है।

मानव समाज के विकास के इस विश्लेषण में शामिल अवधारणाएँ हैं: यांत्रिकी का बढ़ता हुआ उपयोग, उत्पादन की प्रकृति, शासन व्यवस्था, संसाधनों और अधिशेष का बँटवारा, व्यापार और वाणिज्य की प्रकृति आदि।

नैतिकशास्त्र के सिद्धान्तों में विकास को लम्बे समय तक चल सकने की दृष्टि से समझना, वितरण में असमानता से निपटना, ऐसी शासन व्यवस्था के सिद्धान्त जो न्यायपूर्ण और समतावादी हो, यांत्रिकी और विस्तृत व्यापार को उपयोग करने के फायदे और नुकसान आदि शामिल रहते हैं।

जब हम ज्ञान के अधिक व्यापक और अमूर्त रूप की ओर बढ़ते हैं तो इनमें से कुछ श्रेणियों में हम परस्पर व्याप्त क्षेत्रों और घटकों का अनुक्रम पाते हैं। जैसे–जैसे हम उच्च प्राथमिक कक्षाओं की ओर बढ़ते हैं – मूर्त चित्रों और वर्णनों से सीखने से दूर होना – तो अमूर्तीकरण और बच्चे के अनुभवों से दूरी बढ़ती जाती है। बच्चे से जो व्यापकीकरण करने और सम्बन्ध जोड़ने की अपेक्षा की जाती है वे भी अधिक जटिल हो जाते हैं।

ऐसे में तस्वीर की मूर्तता को बचाए रखने की आवश्यकता बनी रहती है।

द. दृष्टिकोण

जिन दृष्टिकोणों से कोई कक्षा में सामाजिक मुद्दों को उठाता है उसमें छिपा सवाल अत्यन्त परेशान करने वाला है। क्या समता और न्याय का आदर करना सीखने से उन स्थितियों में कुछ करने की अपेक्षा की जाती है जहाँ अन्याय और असमानता हो – चाहे इसका अर्थ बच्चे के घर या समुदाय में प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित बातों का सामना करने से हो? यदि बच्चे अन्याय और असमानता की स्थितियों का अन्वेषण करते हैं तो क्या वे इन्हें बदलने के तरीकों और साधनों की भी चर्चा करते हैं? या, क्या उन्हें अपने को सिर्फ संविधान, उसके वायदों और संरचना तक ही सीमित रखना चाहिए, बिना इसका विश्लेषण किए कि वे यथार्थ में कैसे काम करते हैं? यह एक कठिन निर्णय है।

> *क्या समता और न्याय का आदर करना सीखने से उन स्थितियों में कुछ करने की अपेक्षा की जाती है जहाँ अन्याय और असमानता हो – चाहे इसका अर्थ बच्चे के घर या समुदाय में प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित बातों का सामना करने से हो?*

वास्तविक स्थितियों से उठने वालों सवालों पर कक्षा में चर्चा करना आसान नहीं होता। विभिन्न पृष्ठभूमियों और सामाजिक–आर्थिक स्तरों से आए बच्चे ऐसे मुद्दों पर मात्र सैद्धान्तिक या अकादमिक ढंग से बहस नहीं कर सकते। असमानता, सामाजिक प्रभुत्व और लोकतंत्र के हनन के साथ लोगों और परिवारों के नाम जुड़े रहते हैं। इन सबके साथ व्यक्तिगत सम्बन्धों और उलझावों का बोझ भी होता है। स्कूली व्यवस्था की स्वाभाविक प्रवृत्ति टकराव और अप्रियता को टालने, असमानताओं को छिपाने तथा शान्ति और सद्भाव की वकालत करने की होगी। अच्छा नागरिक वह है जो अपनी स्थिति को शान्त भाव से स्वीकार कर लेता है और आशा करता है कि बेहतर कानून बनेंगे और अधिक प्रभावकारी ढंग से उन्हें लागू किया जाएगा। तर्क दिया जा सकता है कि यही किसी समाज के लिए सबसे अच्छा विकल्प है, लेकिन वास्तव में यह सिर्फ एक दृष्टिकोण है। इसके विपरीत दृष्टिकोण भी हैं।

भारत का संविधान एक न्यायपूर्ण और समतावादी समाज का वायदा करता है। परन्तु वह इसके विस्तार में नहीं जाता कि किस तरह के नागरिक और शासन व्यवस्था इसे साकार कर सकते हैं। इसलिए यह समझ विकसित करने में बच्चे की सहायता करना प्रारम्भिक स्कूली कार्यक्रम का लक्ष्य होना चाहिए। इसलिए सवाल यह है कि क्या हम बच्चों को वर्तमान परिस्थिति में सबसे अच्छे ढंग से सफल होने के लिए तैयार करते हैं? या क्या हम उन्हें सामाजिक प्रवाह की दिशा पर प्रश्न उठाने और जिन लक्ष्यों का वायदा किया गया था उनके लिए संघर्ष करने के लिए तैयार करते हैं?

इसलिए ऐसा कार्यक्रम जो बच्चों में न्याय और बराबरी की भावना निर्मित करने पर ध्यान केन्द्रित करता हो, और ऐसा कार्यक्रम जो समाजरूपी प्राचीन तालाब की निश्चलता को भंग न करते हुए शान्ति और सद्भाव पर ध्यान केन्द्रित करता हो, एक–दूसरे के विरोधाभासी होंगे और उनमें संघर्ष होगा।

बच्चा अपने परिवेश के साथ अनेक अनुभवों और क्रियाकलापों को लेकर स्कूल आता है। उसके पास अपना आदर किए जाने और अपना मूल्य समझे जाने की, तथा एक समूह का हिस्सा माने जाने की यादें होती हैं। पर साथ ही अलग रखे जाने की, दूसरों को दबाने की, या दूसरों के द्वारा दबाए जाने आदि की भी यादें होती हैं। इन अनुभवों ने उसका व्यवहार और मान्यताएँ गढ़ी होती हैं। इनके आधार पर और अपने मौन विश्लेषण के द्वारा उसने अपनी पहचान बनाई होती है। ऐसा कार्यक्रम विकसित करना जो सार्थक ढंग से इन अनुभवों और इस पहचान का उपयोग कर सके और उनके माध्यम से एक साझा दृष्टिकोण विकसित कर सके, आसान नहीं है। फिर, यह भी बहस का मुद्दा हो सकता है कि एक साझा दृष्टिकोण या व्यापक मान्यता ढाँचा वांछनीय भी है या नहीं। हमें यह बात ध्यान में रखना चाहिए कि अनेक परस्पर टकराने वाले वैश्विक दृष्टिकोण होते हैं, और यह साफ नहीं होता कि किस वैश्विक दृष्टिकोण की वकालत की जाना चाहिए। हम इस बात की उपेक्षा नहीं कर सकते कि राज्य अनेक प्रभुत्ववादी ताकतों द्वारा नियंत्रित होता है जो स्वयं भी बच्चे के दृष्टिकोण को ढालना चाहेंगे। इसलिए विषयवस्तु को और उसको पढ़ाए जाने के ढंग को निर्धारित करने का संघर्ष यहाँ काफी तीव्र होता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सामाजिक पहचान विकसित करने और पर्यावरण, सांस्कृतिक और इतिहास की व्याख्या करने के अनेक दृष्टिकोण हो सकते हैं। चुने गए दृष्टिकोण का निर्धारण मनुष्य के उसके समाज से माने गए सम्बन्ध, मनुष्यों के बीच के सम्बन्ध, और बच्चे कैसे सीखते हैं इसकी समझ के आधार पर होता है। करने और न करने वाली हिदायतों की कोई भी सूची जो चुनाव, विवेक और तार्किक विश्लेषण का अवसर नहीं देती, स्वीकार नहीं की जा सकती। इसलिए प्राथमिक स्कूलों में सामाजिक अध्ययन के बारे में विचार करते समय ध्यान में रखने वाली बातों में से एक है, उपदेशात्मक कार्यक्रम विकसित करने के जाल में उलझने से बचना।

इ. विषय की प्रकृति

क्या यह सामाजिक अध्ययन है या सामाजिक विज्ञान?

आम प्रचलित धारणा रही है कि वैज्ञानिक पद्धति ज्ञान और जीवन का बेहतर मार्ग सुलभ कराती है; यह भी कि गणितीय तर्क प्रणाली के साथ मिलकर यह मानवीय जीवन को तर्कसंगत बनाने के लिए एक समग्र समाधान बन जाती है। इसके परिणामस्वरूप सामाजिक अध्ययन क्षेत्रों का भी, वैज्ञानिक प्रत्यय जोड़कर, फिर से नामकरण कर दिया गया।

वैश्विक रूप से विज्ञान और यांत्रिकी की शक्ति, तथा प्रमाण–आधारित तर्कों और वैचारिक तर्क पद्धति के अचूक होने के विश्वास को ही समस्त ज्ञान के निर्माण का आधार माना गया। यह धारणा अध्ययन के सभी क्षेत्रों में घर कर गई, और इसके फलस्वरूप वैज्ञानिक दृष्टिकोण मूल्यवान हो गया। सामाजिक अध्ययन के अन्तर्गत आने वाले विभिन्न विषयों के अध्येताओं ने परिश्रमपूर्वक यह बताया कि किस तरह उनका विषय विज्ञान के निकट था और संज्ञानात्मक दृष्टि से उतना ही तर्कसंगत था।

परन्तु, जहाँ तर्कों और वैचारिक संरचनाओं के तर्कसंगत होने की आवश्यकता में कुछ भी गलत नहीं है, वहीं इस बात को ध्यान में रखना महत्वपूर्ण है कि मानव व्यवहार के कई पहलू सीधे–साफ विवेकपूर्ण विश्लेषण और तर्कशास्त्र के अनुरूप नहीं होते क्योंकि उनमें कई असंगतियाँ होती हैं। उदाहरण के लिए आस्था प्रणालियाँ कैसे निर्मित होती हैं, यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न है और इसकी जाँच–पड़ताल ऐसे तरीके से करना पड़ती है जिसे वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता।

> *फिर, यह भी बहस का मुद्दा हो सकता है कि एक साझा दृष्टिकोण या व्यापक मान्यता ढाँचा वांछनीय भी है या नहीं। हमें यह बात ध्यान में रखना चाहिए कि अनेक परस्पर टकराने वाले वैश्विक दृष्टिकोण होते हैं, और यह साफ नहीं होता कि किस वैश्विक दृष्टिकोण की वकालत की जाना चाहिए।*

प्राकृतिक विज्ञान की एक पद्धति होती है, उसका अपना तरीका होता है जिससे वह ज्ञान का वैध होना और विज्ञान के दायरे में होना स्वीकारता है। वैज्ञानिक प्रक्रिया के विभिन्न प्रकार के चरण हो सकते हैं लेकिन उनके आधारभूत सिद्धान्त समान होते हैं। और, ज्ञान को अन्तिम रूप से तब स्वीकार किया जाता है जब वह ऐसी भविष्यवाणियाँ करता है जिनकी पुष्टि की जा सके। लेकिन मानव व्यवहार की निपट परिवर्तनशीलता को ध्यान में रखते हुए, समाज के विविध पहलुओं, और उसके परिवर्तनों का पुनरावलोकन करने के लिए, प्रक्रियाओं की ऐसी व्यवस्था की आवश्यकता होती है जिसे सहज रूप से सामाजिक विज्ञान की पारिभाषिक शब्दावली में समाविष्ट नहीं किया जा सकता। विज्ञान के प्रतिकूल, मनुष्य या समाज तर्कसंगत, वस्तुनिष्ठ और प्रायोगिक रूप से एक समान नहीं होते। हमारे लिए स्वयं इस बात पर विचार करना अच्छा होगा कि क्या सामाजिक अध्ययन के विषयों में ज्ञान का मूल्यांकन करने के मानदण्ड, या यह स्वीकार करने के मानदण्ड कि कोई समझने योग्य विचार प्रतिपादित किया गया है, वे ही हो सकते हैं जो विज्ञान के विषयों में होते हैं।

> *विज्ञान के प्रतिकूल, मनुष्य या समाज तर्कसंगत, वस्तुनिष्ठ और प्रायोगिक रूप से एक समान नहीं होते। हमारे लिए स्वयं इस बात पर विचार करना अच्छा होगा कि क्या सामाजिक अध्ययन के विषयों में ज्ञान का मूल्यांकन करने के मानदण्ड, या यह स्वीकार करने के मानदण्ड कि कोई समझने योग्य विचार प्रतिपादित किया गया है, वे ही हो सकते हैं जो विज्ञान के विषयों में होते हैं।*

फ. कक्षा की प्रक्रियाएँ

खाप पंचायतों के प्रभुत्व वाले समाज में, विवाह करने की वैधानिक उम्र और विवाह करने की स्वतंत्रता पर स्कूल में चर्चा करना कठिन है। इसी प्रकार, बाजार की ताकतों के द्वारा संचालित अर्थव्यवस्था में हम किस प्रकार सार्थक ढंग से समता, नियंत्रण और संतोष की बात कर सकते हैं? इन चर्चाओं की विषयवस्तु के तनावों और निहितार्थों के कारण उनका स्कूल में किया जाना कठिन हो जाता है। इसके अलावा स्कूल के संस्थागत ढाँचे की विचारधारा का भी सवाल है, और इसका भी कि किस सीमा तक वह मुक्त चर्चा और वैचारिक जाँच–पड़ताल करने की अनुमति दे सकता है, खासतौर पर ऐसे विषयों पर जिनका बच्चों और उनके आसपास के वयस्कों के जीवन से सम्बन्ध हो।

हालाँकि कक्षा की प्रक्रियाओं की परिपूर्ण व्याख्या इस लेख के दायरे के बाहर होगी, पर हम निम्नलिखित पाँच प्रश्नों पर विचार करेंगे:

1. क्या प्राथमिक कक्षाओं में विज्ञान और सामाजिक विज्ञान को

एक ही दृष्टिकोण से समझा जा सकता है, विशेष रूप से यह देखते हुए कि दोनों संयुक्त रूप से 'पर्यावरण अध्ययन' के अन्तर्गत पढ़ाए जाते हैं?

2 क्या शिक्षण कार्यक्रम को मोटे तौर पर विद्यार्थियों के ज्ञान के आधार पर निर्मित किया जा सकता है?

3. आप विद्यार्थी के अनुभव पर विषय को, खासतौर से इतिहास में, कैसे निर्मित कर सकते हैं?

4. जहाँ बात बच्चे के लिए तात्कालिक टकराव वाले मुद्दे की हो तो शिक्षक सीमारेखा कहाँ खींचेंगे?

5. क्या पाठ्यक्रम के बारे में एक समेकित बहुविषयी दृष्टिकोण हो सकता है, या पृथक विषयों पर आधारित कार्यक्रम की आवश्यकता है?

क्या प्राथमिक कक्षाओं में विज्ञान और सामाजिक विज्ञान को एक ही दृष्टिकोण से समझा जा सकता है, विशेष रूप से यह देखते हुए कि दोनों संयुक्त रूप से 'पर्यावरण अध्ययन' के अन्तर्गत पढ़ाए जाते हैं?

एक स्तर पर, एक ऐसा दृष्टिकोण सम्भव है जिसमें परिकल्पनाएँ करना, सामाजिक पहलुओं का प्रेक्षण करना और उनमें नियमित संरचनाएँ खोजना शामिल हो, जैसा कि विज्ञान में किया जाता है। परन्तु इस 'वैज्ञानिक' पद्धति को आगे बढ़ाते हुए यह समझने के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता कि समाज कैसे विकसित और परिवर्तित होते हैं, कैसे मानव सभ्यताओं ने शिल्प कलाओं का इस्तेमाल करना सीखा, और इसका उनके लोगों के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा। इसी प्रकार, शासन की प्रणालियों और उनका किसी समाज के व्यक्तियों के लिए क्या मतलब होता है, इसकी विवेचना करना भी सम्भव नहीं है। सामाजिक गतिशीलता और परिस्थितियों की जटिलता के चलते, कारण तथा परिणाम के स्पष्ट सम्बन्धों को देख पाना मुश्किल होता है। इसके बजाय चीजें जैसी हैं उसका विवरण ही हम देख पाते हैं और उनमें अन्तर करने वाले सूक्ष्म भेदों को पकड़ पाते हैं।

> *सामाजिक अध्ययन के शिक्षण में निहित कठिनाइयों के साथ इस धारणा, कि वैज्ञानिक ज्ञान सर्वोपरि है, के गठजोड़ ने स्कूल में सामाजिक विषयों के व्यापक तौर पर शामिल किए जाने को हतोत्साहित किया है।*

जाहिर है कि प्राथमिक स्तर पर भी विज्ञान और सामाजिक विज्ञान के दृष्टिकोण भिन्न होंगे। सामाजिक अध्ययन के शिक्षण में निहित कठिनाइयों के साथ इस धारणा, कि वैज्ञानिक ज्ञान सर्वोपरि है, के गठजोड़ ने स्कूल में सामाजिक विषयों के व्यापक तौर पर शामिल किए जाने को हतोत्साहित किया है। यही कारण है कि ईवीएस में भी ध्यान बच्चों के जीवन–अनुभवों पर केन्द्रित न होकर सर्वेक्षण करने और नक्शे पर स्थानों को चिन्हित करने पर होता है।

क्या शिक्षण कार्यक्रम को मोटे तौर पर विद्यार्थियों के ज्ञान के आधार पर निर्मित किया जा सकता है?

कार्यक्रम के आरम्भ होते समय बच्चों के पास स्थानीय और व्यक्तिगत जानकारी होती है। यह जानते हुए हम उसका उपयोग ऐसी अधिक व्यापक अवधारणात्मक संरचनाएँ निर्मित करने के लिए करते हैं जो विद्यार्थी के अनुभव पर आधारित होती हैं और उससे जुड़ती हैं।

> *यदि कार्यक्रम बच्चे को कारण खोजने, अपने विचारों को व्यवस्थित करने और विकल्प चुनने का अवसर देता है तो बच्चे के व्यवहार के लिए उसके उपयोगी अर्थ होंगे। ऐसा कार्यक्रम बच्चे को इसकी प्रतीति कराएगा कि समाज क्या है और उससे कैसे जुड़ना चाहिए।*

बच्चे को उपलब्ध जानकारी विभिन्न रूपों में होती है। उसमें परिवार और सम्बन्धी, उसके गाँव का नाम और पास–पड़ोस के गाँव का नाम, पास में बहने वाली नदी, आसपास के पेड़ों, उगाई जाने वाली विभिन्न प्रकार की फसलों के नाम, बाजार कहाँ है, और वहाँ क्या बिकता है, आदि बातें शामिल रहती हैं।

जैसे–जैसे बच्चा बड़ा होता है उसे उपलब्ध जानकारी की मात्रा और उसका दायरा बढ़ते जाते हैं। जहाँ कुछ हद तक यह अपने आप होता है, वहीं सामाजिक अध्ययन के एक औपचारिक प्रयास को ऐसी जानकारी और ज्ञान को बच्चे को सुलभ कराना चाहिए जिस तक अन्यथा उसकी पहुँच नहीं होती। इसके लिए जरूरी होगा कि वह बारीकी से अवलोकन करे, जानकारी और आँकड़े इकट्ठा करे, प्रेक्षणों से व्यापक अवधारणाएँ बनाए और निष्कर्ष आदि निकाले। बच्चे को धीरे–धीरे बढ़ती हुई कठिनाई वाले कार्य करने के अवसर दिया जाना बहुत जरूरी है।

यदि कार्यक्रम बच्चे को कारण खोजने, अपने विचारों को व्यवस्थित करने और विकल्प चुनने का अवसर देता है तो बच्चे के व्यवहार के लिए उसके उपयोगी अर्थ होंगे। ऐसा कार्यक्रम बच्चे को इसकी प्रतीति कराएगा कि समाज क्या है और उससे कैसे जुड़ना चाहिए। वह आसपास की दुनिया में घट रही घटनाओं को समझने के तरीके भी सुझाएगा। बच्चे को कुछ विशेष सिद्धान्तों और सामाजिक आदर्शों का ज्ञान होना और उन पर सवाल उठाने में उसका सक्षम होना भी जरूरी है।

आप विद्यार्थी के अनुभव पर विषय को, खासतौर से इतिहास में, कैसे निर्मित कर सकते हैं?

अवधारणाओं के लिए विषयसूत्र और प्रारम्भिक बिन्दु चुनने के लिए अनेक लोक दृष्टियाँ हैं। इनमें सर्वोपरि तर्क है ज्ञात से अज्ञात की ओर बढ़ना, और इसका मतलब है जो बच्चे के आसपास है उससे दूर की चीजों की तरफ जाना। परन्तु बच्चे इतनी विविध प्रकार की पृष्ठभूमियों से आते हैं कि उनके कारण इसे सार्थक ढंग से करना कठिन हो जाता है। बच्चे के अनुभव का उपयोग यही हो सकता है कि जो वह जानता है उसे प्रकट करने में और उसका विश्लेषण करने में उसकी सहायता की जाए।

फिर भी, अनुभव के कुछ तत्व ऐसे होते हैं जिन्हें निश्चित रूप से कक्षा में उपयोग किया जा सकता है। जैसे अलग–अलग तरह के कारीगर क्या करते हैं, कौन से औजार और सामग्री इस्तेमाल करते हैं, गाँव में कौन–सी चीजें बाहर से आती हैं, गाँव से कौन–सी चीजें बाहर जाती हैं, लोग जलाऊ लकड़ी कहाँ से लाते हैं, उन्हें पानी कहाँ से मिलता है, त्यौहारों के दौरान लोग क्या करते हैं, आदि, ऐसे तमाम विषयों पर बातचीत इसमें शामिल हो सकती है। ये सब प्रेक्षणों के सहज विवरण होते हैं, परन्तु उनमें इनका आलोचनात्मक विश्लेषण जोड़ देने से ये बातें कठिन बन सकती हैं। इसका विश्लेषण करना आसान नहीं है कि क्यों कुछ लोगों के घर में ही जलस्रोत होता है जबकि दूसरों को पानी लाने बहुत दूर जाना पड़ता है, या कि क्यों कुछ लोगों को पास के जलस्रोतों से पानी लेने की अनुमति भी नहीं होती।

एक मुद्दा यह भी है कि पहले क्या हुआ इसके बारे में सोचने की बच्चे की शुरुआत आप कैसे करते हैं। पहले यह तय करना जरूरी है कि हम राजाओं, राजवंशों, उनके युद्धों के बारे में बात करना चाहते हैं, या कुछ और। यदि इस पर सहमति हो कि हमारे लिए कम से कम ऐसा ऐतिहासिक दृष्टिकोण होना जरूरी है जो समाज के वर्णन और लोगों के जीवन को महत्व देता हो तो हमें बच्चों से इस पर बातचीत करना शुरू करना चाहिए। निश्चित ही, हम बच्चों के वंशवृक्ष से, और उनके माता–पिता तथा बुजुर्ग पुराने समयों के बारे में क्या सोचते हैं, इससे प्रारम्भ कर सकते हैं। परन्तु, इससे कारणों और निहितार्थों की साफ–साफ पहचान नहीं बनती। इसके अलावा इससे ऐसे प्रश्न भी सामने नहीं आते जिनकी विवेचना की जा सके।

इसलिए प्रत्यक्ष अनुभवों का उपयोग करते हुए ऐतिहासिक समझ निर्मित करना कठिन हो जाता है। विश्लेषण के ढाँचे के लिए व्यापक जानकारी का आधार आवश्यक होता है जो बच्चे को तत्काल सुलभ नहीं होता। आँशिक रूप से इस कमी की पूर्ति सुनाई गई कहानियों के माध्यम से की जा सकती है – उदाहरण के लिए, उपलब्ध व्यक्तियों के द्वारा सुनाए गए सामान्य लोगों के जीवन के विवरण।

अब तक यह स्पष्ट हो गया होगा कि कक्षा की पढ़ाई, बच्चा जो पहले से जानता है सिर्फ उसके इर्द–गिर्द नहीं घूम सकती। उसके ज्ञान के दायरे का विस्तार करने के लिए नई जानकारी जोड़े जाने की जरूरत होती है। बच्चे के लिए बहुलता और विविधता को समझना भी बहुत महत्वपूर्ण है। उसे अपनी अवधारणात्मक संरचनाएँ निर्मित करते समय इन सभी बातों को ध्यान में रखना जरूरी है। ऐसा विश्लेषण केवल विस्तृत वर्णनों को सुलभ कराकर हो सकता है ताकि सीखने वाला दी गई जानकारी से एक खास सम्बन्ध स्थापित कर सके। इसके लिए उपलब्ध सन्दर्भ समृद्ध और सुसम्बद्ध होना चाहिए।

> *इसका तात्पर्य यह है कि जहाँ विचलित करने वाले प्रश्न पूछना सामाजिक अध्ययन की प्रकृति में ही निहित है, वहीं बहस को किस सीमा तक आगे ले जाना है, इसका उचित फैसला उसी समय केवल शिक्षक के द्वारा ही किया जा सकता है।*

यह सुनिश्चित करना भी महत्वपूर्ण होगा कि जानकारी ऐसे स्वरूप में दी जाए जो अपने आप में रोचक हो। उदाहरण के लिए, वह कहानी के रूप में या विस्तृत चित्रों के संग्रह के रूप में हो सकती है। इन चित्रों में दर्शाए जाने वाले उदाहरण बच्चे के अनुभवों के विभिन्न पहलुओं से जुड़ना चाहिए। ऐसे विवरणों से बच्चों को जोड़ने के कई तरीके हो सकते हैं, जिनमें उसके खुद के अनुभव से उनकी तुलना करना और इस पर सोचने और मनन करने के लिए प्रेरित करना शामिल हो सकते हैं। हमें उसकी कल्पना को बीते समय में ले जाने की जरूरत होती है, और इसके लिए ऐसे खूँटे चाहिए

जिनके सहारे पुराने कालों के ऐसे विवरण दिए जा सकें जो बच्चे के लिए रोचक हों।

जहाँ बात बच्चे के लिए तात्कालिक टकराव वाले मुद्दे की हो तो शिक्षक सीमा रेखा कहाँ खींचेंगे?

यह तय करना तुलनात्मक दृष्टि से आसान हो सकता है कि आप भौतिक भूगोल के साथ क्या करना चाहते हैं, हालाँकि इसमें भी अमूर्तीकरण का परिमाण और उन भूक्षेत्रों का आकार जिनके लिए ये महत्वपूर्ण होते हैं, अपने आप में भयावह होते हैं। यह जानना भी सम्भव है कि गाँव के बाजार का क्या करना है या हम मुद्रा के विचार का विश्लेषण कैसे करें। परन्तु जब हम अधिशेष का सम्बन्ध असमानता की सामाजिक गतिकी से जोड़ते हैं और सम्पत्ति के संचय का, निजी जायदाद के औचित्य का, या विरासत में मिली सम्पत्ति का विश्लेषण करते हैं, तो हम सामाजिक अध्ययन की ऐसी अवधारणाएँ निर्मित कर रहे होते हैं जो अलग–अलग लोगों के लिए अलग–अलग तरीके से काम करती हैं। हम एक साथ सामाजिक विचारों के निर्माता और उनके विश्लेषक, दोनों होते हैं।

इस प्रकार कक्षा में मुक्त बहस महत्वपूर्ण, और यहाँ तक कि व्यवस्था की निन्दा करने वाली भी हो सकती है। इसी प्रकार, यदि हम भूगोल का सम्बन्ध देशों की राजनीति से, और संसाधनों के वर्चस्व और वितरण से जोड़ें, तो गैर बराबरी के ऊपर प्रश्न उठाने और स्वीकार्यता को बढ़ावा देने के बीच के मध्य मार्ग की चुनौती बारीक हो जाती है।

ऐसे शिक्षकों के अनेक उदाहरण होते हैं जो यह तो मानते हैं कि बच्चों का 'दूसरे' के बारे में सोचना और समता तथा बहुलता के मुद्दों के प्रति संवेदनशील होना जरूरी है, परन्तु जो चर्चा को आगे बढ़ाने में अपने को असमर्थ महसूस करते हैं। सांस्कृतिक दृष्टिकोणों के मन में गहरे तक जमे होने से संकट की स्थिति में स्कूल के लिए हस्तक्षेप करना कठिन होता है। संवाद की शुरुआत करने के लिए किसी भी प्रयास को यह जानना चाहिए कि जब समुदायों के बीच अन्तर सबसे तीव्र होते हैं उस समय भावनाएँ भी उग्र होती हैं। साथ ही, जाति के पूर्वाग्रह और पहले से बन चुकी सापेक्षिक स्थितियाँ सिर्फ तर्कसंगत बहस का मामला नहीं हो सकतीं। और, किसी भी सूरत में, कक्षा में उपस्थित बच्चों के बीच में विपन्नता और भेदभाव के बारे में बात करना आसान नहीं होता।

इसका तात्पर्य यह है कि जहाँ विचलित करने वाले प्रश्न पूछना सामाजिक अध्ययन की प्रकृति में ही निहित है, वहीं बहस को किस सीमा तक आगे ले जाना है, इसका उचित फैसला उसी समय केवल शिक्षक के द्वारा ही किया जा सकता है।

क्या पाठ्यक्रम के बारे में एक समेकित बहुविषयी दृष्टिकोण हो सकता है, या पृथक विषयों पर आधारित कार्यक्रम की आवश्यकता है?

सामाजिक अध्ययन पढ़ाने के सिलसिले में हमें समेकित बनाम विषय–आधारित कार्यक्रमों की पड़ताल करना भी जरूरी है। समेकित कार्यक्रम के पक्ष में तर्क यह है कि बच्चा यथार्थ जगत को उसकी समग्रता में देखता है। इसलिए उसका विवरण भी अलग–अलग विषयों में बँटा होने के बजाय अखण्ड होना चाहिए। यह अतिवादी दृष्टिकोण ऐसा सुझाव देता हुआ प्रतीत होता है कि सम्पूर्ण कार्यक्रम अलग–अलग विषयों पर आधारित अवधारणाओं के स्पष्ट विकास के बजाय एक भेदरहित विचारसूत्र की तरह विकसित किया जाए।

एक विचारसूत्र–आधारित प्रस्तुतिकरण के चरम समर्थक अक्सर उन तत्वों को सुनिश्चित करना भूल जाते हैं जो प्राथमिक स्कूल को आगे के विकास से जोड़ते हैं। प्रारम्भिक स्कूलों के कार्यक्रमों का एक खास विषय–उन्मुख रुझान होता है जो माध्यमिक कक्षाओं की ओर बढ़ने पर बढ़ता जाता है। उदाहरण के लिए, इस बात की अपेक्षा साफ प्रतीत होती है कि बच्चे के ऊपरी प्राथमिक कक्षाओं में पहुँचने तक उसे नक्शे पढ़ने में समर्थ हो जाना चाहिए, और इसलिए बच्चे में यह योग्यता विकसित करने में मदद करने वाला कार्यक्रम होना चाहिए। लेकिन इसका अपने आप होना किसी एक या दूसरे विचारसूत्र पर नहीं छोड़ा जा सकता।

इसी प्रकार, इतिहास का महत्व समझने के लिए प्राथमिक स्कूल के बच्चे को काल की और उसे अपनी गतिविधि से जोड़ने की समझ होना चाहिए। किसी भी विकसित की जाने वाली विषयवस्तु का आधार यह निष्कर्ष होना चाहिए कि एक ऐतिहासिक समयरेखा का होना आपके लिए जरूरी है। इसके लिए विशेष विषय के अमूर्तीकरण के ऐसे स्तर की आवश्यकता होती है जो एक समेकित विचारसूत्र–आधारित पद्धति के अन्तर्गत विकसित नहीं होगा।

सामग्री का समेकित होना इसे बच्चे के लिए अधिक रोचक बना सकता है। परन्तु यह अपने आप में लक्ष्य नहीं हो सकता। यह पहचानना महत्वपूर्ण है कि औपचारिक शिक्षा बच्चे को समग्र यथार्थ को समझने और उसका कई दृष्टियों से विश्लेषण करने में मदद करने के लिए होती है, और इसके लिए पृथक विषयों पर आधारित कार्यक्रम आवश्यक है।

ग. अन्तिम टिप्पणी

इस लेख में उठाए गए सभी सवालों के उत्तर हमारे पास नहीं हैं; वे सामाजिक अध्ययन कार्यक्रम विकसित करने के संघर्ष का हिस्सा

हैं। पूरे शैक्षिक समुदाय में, खासकर प्राथमिक स्कूल शिक्षकों और पाठ्यपुस्तकों लेखकों के बीच सामाजिक अध्ययन के मुद्दों की व्यापक समझ विकसित करने की जरूरत है, ताकि वे कक्षा की गतिविधियों को उपयुक्त जानकारी से समृद्ध बना सकें।

लेखक की ओर से आभार

इस लेख को व्यवस्थित और सम्पादित करने में सहायता के लिए मैं अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन के आनंद स्वामीनाथन और विद्या भवन की महिमा सिंह के प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करना चाहूँगा।

हृदयकांत दीवान (हार्डी) *एकलव्य के संस्थापक समूह के एक सदस्य हैं और वर्तमान में विद्या भवन सोसायटी, उदयपुर के संगठन सचिव एवं शैक्षणिक सलाहकार हैं। वे शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न पक्षों पर विभिन्न तरीकों से पिछले 35 वर्षों से कार्य कर रहे हैं। विशेष रूप से वे शैक्षणिक नवाचार तथा राज्य की शैक्षणिक व्यवस्थाओं में संशोधन के प्रयासों से जुड़े रहे हैं। उनसे इस vbsudr@yahoo.com ईमेल पते पर सम्पर्क किया जा सकता है।*

